Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा

डा. राज पाल
प्राचार्य
गांधी आदर्श कालेज
समालखा (पानीपत)

DECLARATION: I AS AN AUTHOR OF THIS PAPER /ARTICLE, HERE BY DECLARE THAT THE PAPER SUBMITTED BY ME FOR PUBLICATION IN THE JOURNAL IS COMPLETELY MY OWN GENUINE PAPER. IF ANY ISSUE REGARDING COPYRIGHT/PATENT/OTHER REAL AUTHOR ARISES, THE PUBLISHER WILL NOT BE LEGALLY RESPONSIBLE. IF ANY OF SUCH MATTERS OCCUR PUBLISHER MAY REMOVE MY CONTENT FROM THE JOURNAL WEBSITE. FOR THE REASON OF CONTENT AMENDMENT /OR ANY TECHNICAL ISSUE WITH NO VISIBILITY ON WEBSITE /UPDATES, I HAVE RESUBMITTED THIS PAPER FOR THE PUBLICATION.FOR ANY PUBLICATION MATTERS OR ANY INFORMATION INTENTIONALLY HIDDEN BY ME OR OTHERWISE, I SHALL BE LEGALLY RESPONSIBLE. (COMPLETE DECLARATION OF THE AUTHOR AT THE LAST PAGE OF THIS PAPER/ARTICLE

सारांश

संन्यास भारतीय दर्शन एवं संस्कृत साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी अवधारणा है, जिसका विकास वैदिक काल से लेकर उपनिषद, स्मृति साहित्य एवं भगवद्गीता तक निरंतर एवं क्रमिक रूप से होता रहा है। संस्कृत साहित्य में संन्यास को केवल बाह्य त्याग या सांसारिक परित्याग के रूप में नहीं, बल्कि आंतरिक वैराग्य, आत्मबोध तथा मोक्ष-साधना के सर्वोच्च मार्ग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह अवधारणा मानव जीवन को कर्म, ज्ञान और भक्ति के संतुलन के माध्यम से आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर प्रेरित करती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा का दार्शनिक, धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से समग्र अध्ययन करना है। इस शोध में वैदिक साहित्य में कर्मप्रधान जीवन-दृष्टि, उपनिषदों में आत्मज्ञान एवं ब्रह्मसाक्षात्कार की भावना, स्मृति ग्रंथों में आश्रम व्यवस्था तथा भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मसंन्यास एवं ज्ञानसंन्यास की अवधारणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। शोध-पद्धति के रूप में वर्णनात्मक एवं पाठ्य-विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग करते हुए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का सहारा लिया गया है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि संन्यास भारतीय दर्शन में कर्म-विमुखता नहीं, बल्कि निष्काम कर्म, मानसिक वैराग्य और आत्मिक अनुशासन की पराकाष्ठा है। संन्यास व्यक्ति को आत्मकेंद्रित साधना के माध्यम से समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाता है तथा उसे मोक्ष की दिशा में अग्रसर करता है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है।

Key Words: संन्यास, संस्कृत साहित्य, वैराग्य, उपनिषद, भगवद्गीता, मोक्ष

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति और दर्शन की परंपरा आत्मिक अन्वेषण एवं आध्यात्मिक चेतना पर आधारित रही है। भारतीय चिंतन में मानव जीवन को केवल भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति तक सीमित न मानकर उसे आत्मबोध, धर्मानुशीलन एवं मोक्ष-साधना की दिशा में प्रवाहित किया गया है। इसी व्यापक जीवन-दृष्टि के अंतर्गत 'संन्यास' की अवधारणा का उद्भव हुआ, जो संस्कृत साहित्य की एक केन्द्रीय एवं मौलिक संकल्पना के रूप में विकसित हुई है। संन्यास भारतीय दर्शन में जीवन के चरम लक्ष्य—मोक्ष—की प्राप्ति का एक सशक्त साधन माना गया है।

संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा का वह विशाल एवं समृद्ध कोष है, जिसमें मानव जीवन के विविध आयामों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का संतुलित एवं दार्शनिक विवेचन उपलब्ध होता है। वैदिक काल में जहाँ जीवन को यज्ञप्रधान कर्म के रूप में देखा गया, वहीं कालांतर में उपनिषदिक चिंतन के माध्यम से आत्मज्ञान एवं ब्रह्मसाक्षात्कार को जीवन का परम उद्देश्य स्वीकार किया गया। इसी क्रम में संन्यास की अवधारणा का क्रमिक विकास हुआ, जिसने बाह्य कर्मकांड से अंतर्मुखी साधना की ओर मानव को प्रेरित किया। सामान्यतः संन्यास को सांसारिक वस्तुओं एवं पारिवारिक दायित्वों के परित्याग के रूप में समझा जाता है, किंतु संस्कृत साहित्य में इसकी व्याख्या कहीं अधिक व्यापक, गूढ़ एवं दार्शनिक है। यहाँ संन्यास केवल वस्तु-त्याग न होकर आसक्ति-त्याग, अहंकार-निवारण एवं आत्मशुद्धि की प्रक्रिया है। उपनिषदों में संन्यास को अविद्या से विद्या की ओर तथा बंधन से मुक्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग बताया गया है। 'नेति-नेति' की भावना तथा आत्मा-ब्रह्म की एकता का बोध संन्यास की मूल आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित है।

भारतीय आश्रम व्यवस्था में संन्यास को चतुर्थ एवं अंतिम आश्रम के रूप में स्वीकार किया गया है। यह अवस्था जीवन की उस परिपक्व स्थिति को सूचित करती है, जहाँ व्यक्ति सामाजिक दायित्वों का निर्वहन कर चुका होता है और अब आत्मिक उन्नति एवं मोक्ष-साधना के लिए पूर्णतः समर्पित हो जाता है। स्मृति ग्रंथों में संन्यास आश्रम के नियम, मर्यादाएँ एवं आचार-विधान विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि संन्यास अनुशासनहीनता नहीं, बल्कि कठोर आत्मानुशासन की अवस्था है। भगवद्गीता में संन्यास की अवधारणा को एक नवीन एवं संतुलित दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। गीता में कर्मसंन्यास और ज्ञानसंन्यास के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए निष्काम कर्म को संन्यास का श्रेष्ठ रूप स्वीकार किया गया है। श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित यह दृष्टि संन्यास को कर्म-विमुखता के आरोप से मुक्त कर उसे

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

जीवनोपयोगी एवं समाजोपकारी सिद्ध करती है। इस प्रकार संन्यास केवल व्यक्तिगत मुक्ति का साधन न होकर सामाजिक चेतना को भी उन्नत करने वाला तत्व बन जाता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा का ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से गहन अध्ययन करना है। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि संन्यास की संकल्पना वैदिक काल से लेकर उत्तरवर्ती साहित्य तक कैसे विकसित हुई तथा समकालीन संदर्भ में इसकी क्या प्रासंगिकता है। यह अध्ययन न केवल शास्त्रीय ग्रंथों की व्याख्या प्रस्तुत करता है, अपितु आधुनिक जीवन के संदर्भ में संन्यास की उपयोगिता एवं मूल्यबोध को भी रेखांकित करता है।

संन्यास : शब्दार्थ, व्युत्पत्ति एवं दार्शनिक विवेचना

'संन्यास' शब्द भारतीय दर्शन एवं संस्कृत साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण संकल्पना है, जिसका अर्थ केवल बाह्य परित्याग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया को सूचित करता है। 'संन्यास' शब्द संस्कृत धातु √**न्यास्** से निष्पन्न हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ है— *रखना, स्थापित करना या त्याग देना*। उपसर्ग 'सम्' के योग से 'संन्यास' का अर्थ होता है— *पूर्णतः त्याग करना, संपूर्ण रूप से अर्पित कर देना* अथवा *सम्यक् रूप से न्यास करना*। इस प्रकार व्युत्पत्तिगत दृष्टि से संन्यास का तात्पर्य केवल वस्तुओं के परित्याग से नहीं, बल्कि समस्त आसक्तियों, अहंभाव और कर्मफल की कामना को त्यागकर आत्मतत्त्व में स्थित होना है। संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा का मूल आधार वैराग्य, विवेक और आत्मज्ञान है। यहाँ संन्यास को जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन की गहनतम समझ के परिणामस्वरूप उत्पन्न अवस्था माना गया है। दार्शनिक दृष्टि से संन्यास का अभिप्राय है— *अविद्या का परित्याग और विद्या की प्राप्ति*। यह वह स्थिति है जहाँ मनुष्य इंद्रियजन्य विषयों से ऊपर उठकर आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव करता है। उपनिषदों में संन्यास को इसी आत्मबोध की प्रक्रिया से जोड़ा गया है। संन्यास की अवधारणा को यदि व्यापक रूप में देखा जाए, तो यह तीन स्तरों पर कार्य करती है— मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक। मानसिक स्तर पर संन्यास का अर्थ है विषयासक्ति का त्याग; नैतिक स्तर पर यह अहिंसा, सत्य और संयम जैसे मूल्यों की स्थापना करता है; जबकि आध्यात्मिक स्तर पर यह आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य की अनुभूति कराता है। इस प्रकार संन्यास एक समग्र जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करता है, जो मनुष्य को आंतरिक शुद्धि और आत्मिक उत्कर्ष की ओर ले जाती है।

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

संस्कृत ग्रंथों में संन्यास को प्रायः 'त्याग' के समानार्थी रूप में देखा गया है, किंतु दोनों में सूक्ष्म अंतर भी स्पष्ट किया गया है। 'त्याग' जहाँ सामान्यतः कर्मफल के परित्याग को सूचित करता है, वहीं 'संन्यास' समस्त कर्मों की आसक्ति से मुक्त अवस्था को दर्शाता है। भगवद्गीता में इस अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि संन्यास का वास्तविक स्वरूप बाह्य कर्मों के त्याग में नहीं, बल्कि कर्म करते हुए भी फलासक्ति से मुक्त रहने में निहित है। इस दृष्टि से संन्यास एक आंतरिक अवस्था है, न कि केवल बाह्य वेश या जीवन-पद्धति।

दार्शनिक रूप से संन्यास का संबंध सांख्य, योग और वेदांत दर्शन से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति के विवेक से जो वैराग्य उत्पन्न होता है, वही संन्यास का बौद्धिक आधार बनता है। योग दर्शन में चित्तवृत्तियों का निरोध संन्यास की मानसिक साधना का स्वरूप प्रस्तुत करता है, जबकि वेदांत दर्शन में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति संन्यास की चरम सिद्धि मानी गई है। इस प्रकार संन्यास भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं को एक सूत्र में पिरोने वाली संकल्पना बन जाता है। संस्कृत साहित्य में संन्यास को केवल व्यक्तिगत मुक्ति का साधन न मानकर उसे समाज के नैतिक उत्थान से भी जोड़ा गया है। संन्यासी को आदर्श आचरण, आत्मसंयम और ज्ञान का प्रतीक माना गया है, जो समाज को सही दिशा प्रदान करता है। इस दृष्टि से संन्यास सामाजिक उत्तरदायित्व से विमुखता नहीं, बल्कि समाज के प्रति सूक्ष्म और उच्चतर दायित्व का निर्वहन है। अतः यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा अत्यंत व्यापक, गहन और बहुआयामी है। यह न तो केवल त्याग का पर्याय है और न ही संकीर्ण तपस्या का रूप, बल्कि यह आत्मिक शुद्धि, वैराग्य और ज्ञान के माध्यम से जीवन को परम लक्ष्य की ओर उन्मुख करने वाली दार्शनिक प्रक्रिया है। यही कारण है कि संन्यास भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में सर्वोच्च जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है।

वैदिक साहित्य में संन्यास की अवधारणा

संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा का प्रारंभिक स्वरूप वैदिक साहित्य में निहित है। यद्यपि वैदिक काल को प्रायः कर्मप्रधान युग के रूप में जाना जाता है, तथापि यह मानना उचित नहीं होगा कि उस काल में संन्यास अथवा वैराग्य की भावना का सर्वथा अभाव था। वास्तव में वैदिक साहित्य में संन्यास की अवधारणा अपने प्रारंभिक, बीजात्मक एवं अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है, जो आगे चलकर उपनिषदिक और उत्तरवर्ती साहित्य में पूर्ण एवं विकसित स्वरूप ग्रहण करती है।

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

वैदिक जीवन-दृष्टि मुख्यतः यज्ञ, कर्म और ऋत की संकल्पना पर आधारित थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में मानव जीवन को देवताओं के प्रति कर्तव्य, यज्ञीय कर्म तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों से संयुक्त रूप में देखा गया है। इस चरण में जीवन का उद्देश्य सांसारिक समृद्धि, संतति, दीर्घायु तथा लोककल्याण माना गया। अतः वैदिक संहिता काल में संन्यास को कर्मत्याग के रूप में नहीं, बल्कि कर्म के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया। ऋग्वेद में जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, उसमें संतुलन, संयम और आत्मानुशासन की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यद्यपि यहाँ संन्यास शब्द का प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं मिलता, किंतु वैराग्य, आत्मसंयम और विषयासक्ति से दूरी जैसे तत्वों के संकेत अनेक सूक्तों में उपलब्ध हैं। वैदिक ऋषियों का जीवन स्वयं एक प्रकार का तपस्वी जीवन था, जिसमें भोग-विलास की अपेक्षा संयम और साधना को प्रधानता दी गई थी। यह प्रवृत्ति संन्यास की प्रारंभिक मानसिक अवस्था का द्योतक मानी जा सकती है।

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ की महत्ता को अत्यधिक विस्तार दिया गया है, परंतु साथ ही यज्ञ के आंतरिक अर्थ की ओर भी संकेत किया गया है। यहाँ कर्म को केवल बाह्य अनुष्ठान न मानकर उसके आध्यात्मिक फल की चर्चा की गई है। यह दृष्टिकोण आगे चलकर कर्म से वैराग्य और अंतर्मुखी साधना की ओर प्रवृत्त करता है। इस प्रकार ब्राह्मण साहित्य वैदिक कर्मकांड और उपनिषदिक संन्यास के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करता है। आरण्यक साहित्य वैदिक चिंतन के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'आरण्यक' शब्द स्वयं ही इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि यहाँ जीवन को वन, एकांत और साधना से जोड़ा गया है। आरण्यक ग्रंथों में यज्ञ की बाह्य प्रक्रिया की अपेक्षा उसके प्रतीकात्मक और आध्यात्मिक अर्थों पर बल दिया गया है। यह वह अवस्था है जहाँ कर्म से ज्ञान की ओर तथा गृहस्थ जीवन से वैराग्य की ओर संक्रमण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस चरण को संन्यास की अवधारणा का पूर्वपीठिका कहा जा सकता है। वैदिक साहित्य में संन्यास की अवधारणा का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष तप और ब्रह्मचर्य की भावना है। तप को आत्मशुद्धि एवं आत्मबल की प्राप्ति का साधन माना गया है। तपस्वी जीवन, इंद्रियनिग्रह और आत्मसंयम—ये सभी तत्व संन्यास के मूल आधार हैं। वैदिक ऋषियों का तपस्वी जीवन इस बात का प्रमाण है कि संन्यास केवल सामाजिक व्यवस्था का परिणाम नहीं, बल्कि आध्यात्मिक चेतना की स्वाभाविक परिणति है।

अथर्ववेद में जीवन के प्रति अपेक्षाकृत अधिक दार्शनिक और मानसिक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। यहाँ सांसारिक दुःख, भय और अस्थिरता की अनुभूति के साथ-साथ शांति और मुक्ति की कामना भी व्यक्त हुई है। यह प्रवृत्ति संन्यास की मानसिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करती है। जीवन की नश्वरता का बोध और स्थायी सत्य की खोज वैदिक मानव को अंतर्मुखी बनने

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में संन्यास की अवधारणा अपने पूर्ण विकसित रूप में नहीं, बल्कि क्रमिक एवं बीजात्मक रूप में विद्यमान है। वैदिक काल में संन्यास कर्मत्याग नहीं, बल्कि कर्म के माध्यम से आत्मिक उन्नति की प्रक्रिया थी। यही अवधारणा आगे चलकर उपनिषदों में कर्म के आंतरिकीकरण, वैराग्य और ब्रह्मज्ञान के रूप में विकसित हुई। अतः वैदिक साहित्य में संन्यास की अवधारणा को समझना संस्कृत साहित्य में संन्यास के संपूर्ण विकासक्रम को समझने के लिए अनिवार्य है। यह अवधारणा वैदिक जीवन-दृष्टि से उपनिषदिक दर्शन की ओर संक्रमण का स्पष्ट संकेत प्रदान करती है और यह सिद्ध करती है कि संन्यास भारतीय चिंतन की एक स्वाभाविक एवं क्रमिक विकास-प्रक्रिया है, न कि किसी एक काल या ग्रंथ की आकस्मिक देन।

उपनिषदों में संन्यास की अवधारणा

उपनिषद भारतीय दर्शन और संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा को स्पष्ट, सुदृढ़ एवं दार्शनिक आधार प्रदान करते हैं। जहाँ वैदिक साहित्य में संन्यास के बीजात्मक संकेत प्राप्त होते हैं, वहीं उपनिषदों में यह अवधारणा पूर्ण परिपक्वता के साथ विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। उपनिषदों का मूल उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म के तत्त्व का बोध कराना है, और यही बोध संन्यास की आत्मा है। इस कारण उपनिषदों को संन्यास-दर्शन का मूल स्रोत कहा जा सकता है। उपनिषदिक चिंतन का केंद्रीय तत्त्व यह है कि संसार नश्वर है और आत्मा शाश्वत। इसी नश्वरता-बोध से वैराग्य की उत्पत्ति होती है, जो संन्यास की आधारभूमि है। उपनिषदों में संन्यास को बाह्य कर्मत्याग के रूप में नहीं, बल्कि आंतरिक आसक्ति-त्याग एवं आत्मज्ञान की साधना के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यहाँ संन्यास ज्ञान की परिणति है, न कि किसी सामाजिक दबाव या आयु-विशेष की अवस्था। ईशोपनिषद में संन्यास की अवधारणा को अत्यंत संतुलित रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य को संसार में रहते हुए भी आसक्ति-रहित जीवन जीना चाहिए। त्याग को जीवन से पलायन नहीं, बल्कि भोग में अनासक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। यह दृष्टि संन्यास को कर्म और जीवन से जोड़ती है तथा उसे व्यावहारिक बनाती है। यहाँ संन्यास जीवन-विरोधी न होकर जीवन-शुद्धि का साधन है।

कठोपनिषद में संन्यास की अवधारणा को नचिकेता और यम के संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नचिकेता द्वारा प्रेय और श्रेय के बीच किया गया विवेकपूर्ण चयन संन्यास की मानसिक अवस्था को दर्शाता है। उपनिषद में यह प्रतिपादित किया गया है कि इंद्रियजन्य सुख क्षणिक हैं, जबकि आत्मज्ञान शाश्वत आनंद प्रदान करता है। यह विवेक ही संन्यास का मूल

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

तत्व है, जो मनुष्य को विषयासक्ति से हटाकर आत्मसाधना की ओर प्रेरित करता है। मुण्डकोपनिषद में संन्यास को कर्मकांड से ऊपर उठकर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यज्ञ, तप और कर्म अपने आप में अंतिम लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि वे ज्ञान की प्राप्ति के साधन मात्र हैं। जब साधक यह समझ लेता है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, तब वह स्वाभाविक रूप से संन्यास की ओर उन्मुख होता है। इस उपनिषद में संन्यास को ज्ञान की चरम अवस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद में संन्यास की अवधारणा अत्यंत गूढ़ और दार्शनिक रूप में व्यक्त हुई है। याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के संवाद में स्पष्ट होता है कि संसार के सभी संबंध और वस्तुएँ आत्मा के सुख के लिए ही मूल्यवान हैं, आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी स्थायी नहीं है। यह बोध संन्यास का दार्शनिक आधार है। यहाँ संन्यास जीवन के अनुभवों से उत्पन्न ज्ञान का स्वाभाविक परिणाम है।

छान्दोग्य उपनिषद में आत्मा और ब्रह्म की एकता को 'तत्त्वमसि' जैसे महावाक्यों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। जब साधक इस एकता का अनुभव कर लेता है, तब उसके लिए भेद, आसक्ति और मोह का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। यही अवस्था संन्यास की चरम स्थिति है, जहाँ साधक संसार में रहते हुए भी उससे बंधा नहीं रहता। उपनिषदों में संन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसे केवल संन्यासी-वेश या वन-गमन से नहीं जोड़ा गया है। यहाँ गृहस्थ रहते हुए भी संन्यास की भावना को अपनाने की बात कही गई है। इसका अर्थ यह है कि संन्यास एक आंतरिक अवस्था है, जिसे किसी भी आश्रम में रहते हुए प्राप्त किया जा सकता है। यह दृष्टि संन्यास को व्यापक और सार्वभौमिक बनाती है।

इस प्रकार उपनिषदों में संन्यास की अवधारणा आत्मज्ञान, वैराग्य और ब्रह्मसाक्षात्कार से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। उपनिषद संन्यास को जीवन की पराकाष्ठा मानते हैं, जहाँ साधक समस्त द्वंद्वों से ऊपर उठकर सत्य, शांति और आनंद की अनुभूति करता है। यही कारण है कि उपनिषदिक संन्यास भारतीय दर्शन में संन्यास की सबसे सुदृढ़ और प्रभावशाली अभिव्यक्ति माना जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि उपनिषदों ने संन्यास को केवल एक जीवन-आश्रम न मानकर उसे एक उच्चतम आध्यात्मिक अवस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया है। संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा का जो पूर्ण, गहन और दार्शनिक स्वरूप हमें प्राप्त होता है, उसका मूल आधार उपनिषदिक चिंतन ही है।

स्मृति साहित्य एवं आश्रम व्यवस्था में संन्यास की अवधारणा

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा के विकासक्रम में स्मृति साहित्य का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ उपनिषदों में संन्यास को मुख्यतः आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है, वहीं स्मृति ग्रंथों में इसे सामाजिक, नैतिक एवं विधिपरक स्वरूप प्रदान किया गया है। स्मृति साहित्य ने संन्यास को केवल व्यक्तिगत मोक्ष-साधना तक सीमित न रखकर उसे सुव्यवस्थित आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत स्थापित किया, जिससे समाज और व्यक्ति के बीच संतुलन बना रह सके।

स्मृति ग्रंथों में वर्णित चतुर्वर्ण-चतुर्वाश्रम व्यवस्था भारतीय सामाजिक संरचना की आधारशिला है। इस व्यवस्था के अनुसार जीवन को चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—में विभाजित किया गया है। संन्यास आश्रम इस व्यवस्था का अंतिम एवं सर्वोच्च चरण माना गया है। यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति समस्त सांसारिक दायित्वों, पारिवारिक बंधनों और सामाजिक कर्तव्यों से निवृत्त होकर पूर्ण रूप से आत्मिक साधना में प्रवृत्त होता है। मनुस्मृति में संन्यास आश्रम का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। यहाँ संन्यास को जीवन की उस परिपक्व अवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें व्यक्ति गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों का सम्यक् रूप से निर्वहन कर चुका होता है। मनु के अनुसार संन्यास का मूल उद्देश्य इंद्रियनिग्रह, आत्मसंयम और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति है। संन्यासी को राग-द्वेष, सुख-दुःख और लाभ-हानि से ऊपर उठकर समत्वभाव को धारण करने वाला माना गया है।

स्मृति साहित्य में संन्यास के लिए कठोर आचार-संहिता निर्धारित की गई है। संन्यासी के लिए अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और संयम को अनिवार्य बताया गया है। यह स्पष्ट करता है कि संन्यास अनुशासनहीन स्वतंत्रता नहीं, बल्कि अत्यंत कठोर आत्मानुशासन की अवस्था है। संन्यासी का जीवन तप, ध्यान और आत्मचिंतन से युक्त होना चाहिए—यही स्मृति साहित्य का मूल प्रतिपादन है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी संन्यास की अवधारणा का व्यवस्थित विवेचन प्राप्त होता है। यहाँ संन्यास को वैराग्य और विवेक की परिणति के रूप में स्वीकार किया गया है। याज्ञवल्क्य के अनुसार संन्यासी को वेदाध्ययन, ध्यान और आत्मज्ञान में निरत रहना चाहिए तथा सांसारिक आकर्षणों से पूर्णतः मुक्त रहना चाहिए। यह दृष्टि संन्यास को ज्ञान-प्रधान साधना के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

नारद स्मृति एवं अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में संन्यास के सामाजिक स्वरूप पर भी विचार किया गया है। संन्यासी को समाज के लिए आदर्श आचरण का प्रतीक माना गया है। वह स्वयं कर्मों से निवृत्त होकर भी समाज को नैतिक दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार स्मृति साहित्य में संन्यास सामाजिक उत्तरदायित्व से पलायन नहीं, बल्कि समाज के नैतिक उत्थान का सूक्ष्म माध्यम बन जाता है। स्मृति साहित्य में यह भी स्पष्ट किया गया है कि संन्यास केवल आयु-

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

विशेष से संबंधित नहीं है, बल्कि वैराग्य और आत्मज्ञान की स्थिति से जुड़ा हुआ है। यदि व्यक्ति में विवेक और वैराग्य उत्पन्न हो जाए, तो वह किसी भी अवस्था में संन्यास के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। यह विचार स्मृति साहित्य को उपनिषदिक परंपरा से जोड़ता है, जहाँ संन्यास को आंतरिक अवस्था के रूप में स्वीकार किया गया था। सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो स्मृति ग्रंथों ने संन्यास को समाज के संतुलन का एक आवश्यक तत्व माना है। गृहस्थ आश्रम समाज की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना को संभालता है, जबकि संन्यास आश्रम समाज को आध्यात्मिक एवं नैतिक दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार संन्यास और गृहस्थ एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। यही संतुलित दृष्टि स्मृति साहित्य की विशेषता है। अतः यह स्पष्ट होता है कि स्मृति साहित्य में संन्यास की अवधारणा को दार्शनिक आधार के साथ-साथ सामाजिक एवं नैतिक स्वरूप भी प्रदान किया गया है। यहाँ संन्यास जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के अनुभवों से उपजे विवेक और वैराग्य की चरम अभिव्यक्ति है। संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा को एक व्यवस्थित और सामाजिक रूप देने में स्मृति साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

भगवद्गीता में संन्यास की अवधारणा

भगवद्गीता संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा को सर्वाधिक संतुलित, व्यावहारिक एवं समन्वयात्मक रूप में प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है। जहाँ उपनिषदों में संन्यास को मुख्यतः ज्ञान और वैराग्य के माध्यम से आत्मबोध की साधना के रूप में प्रतिपादित किया गया है, वहीं गीता में संन्यास को कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय के रूप में विकसित किया गया है। इस दृष्टि से भगवद्गीता संन्यास की अवधारणा को जीवनोपयोगी और समाजोपकारी स्वरूप प्रदान करती है। गीता में संन्यास को लेकर आरंभ से ही एक गहन दार्शनिक प्रश्न उपस्थित होता है—क्या कर्म का त्याग ही संन्यास है अथवा कर्म करते हुए आसक्ति का त्याग संन्यास का वास्तविक स्वरूप है? अर्जुन के इसी संशय का समाधान करते हुए श्रीकृष्ण संन्यास की संकल्पना को एक नए आयाम में स्थापित करते हैं। गीता में संन्यास को कर्म-विमुखता के रूप में नहीं, बल्कि कर्मफल-त्याग और मानसिक अनासक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। भगवद्गीता में 'कर्मसंन्यास' और 'ज्ञानसंन्यास' के बीच सूक्ष्म अंतर स्पष्ट किया गया है। कर्मसंन्यास का अर्थ बाह्य कर्मों का पूर्ण परित्याग नहीं, बल्कि कर्म करते हुए फल की कामना का त्याग है। वहीं ज्ञानसंन्यास उस अवस्था को दर्शाता है, जहाँ व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के तत्त्व को जानकर समस्त द्वंद्वों से ऊपर उठ जाता है। श्रीकृष्ण के अनुसार ये दोनों ही मार्ग अंततः मोक्ष की ओर ले जाते हैं, किंतु कर्मयोग को अधिक व्यवहारिक और सर्वसुलभ माना गया है। गीता में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि केवल बाह्य संन्यास, अर्थात कर्मों का त्याग,

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

आत्मिक उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि मनुष्य के भीतर राग, द्वेष और आसक्ति विद्यमान हैं, तो बाह्य त्याग निरर्थक सिद्ध होता है। इस संदर्भ में गीता संन्यास को एक आंतरिक मानसिक अवस्था के रूप में प्रतिष्ठित करती है। यहाँ संन्यास का वास्तविक स्वरूप मन, बुद्धि और अहंकार के शोधन में निहित है। गीता के अनुसार सच्चा संन्यासी वही है, जो न तो किसी से द्वेष करता है और न ही किसी वस्तु की कामना करता है। इस प्रकार संन्यास को समत्वभाव से जोड़ा गया है। सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय में समान भाव रखना संन्यास की पहचान मानी गई है। यह दृष्टि संन्यास को अत्यंत उच्च नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करती है।

भगवद्गीता में संन्यास और त्याग के बीच भी भेद किया गया है। त्याग को कर्मफल-त्याग के रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि संन्यास को आसक्ति-त्याग की अवस्था माना गया है। श्रीकृष्ण के अनुसार त्यागयुक्त कर्म ही संन्यास का श्रेष्ठ रूप है। इस प्रकार गीता संन्यास को निष्क्रियता से मुक्त कर उसे सक्रिय, कर्तव्यपरायण और लोककल्याणकारी बनाती है। भक्ति के संदर्भ में भी गीता संन्यास की अवधारणा को नया आयाम प्रदान करती है। यहाँ संन्यास को ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब साधक अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पित कर देता है और स्वयं को कर्ता न मानकर केवल निमित्त मात्र स्वीकार करता है, तब वह संन्यास की अवस्था को प्राप्त करता है। इस प्रकार भक्ति संन्यास को सरल, सहज और भावनात्मक आधार प्रदान करती है। गीता में संन्यास का सामाजिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि यदि सभी लोग कर्मों का त्याग कर दें, तो समाज का संतुलन बिगड़ जाएगा। अतः संन्यास का वास्तविक स्वरूप समाज से पलायन नहीं, बल्कि समाज में रहते हुए आत्मिक उन्नति करना है। इस दृष्टि से गीता का संन्यास आदर्श गृहस्थ और कर्मयोगी की अवधारणा से जुड़ा हुआ है।

अतः भगवद्गीता में संन्यास की अवधारणा एक समन्वित दर्शन के रूप में प्रस्तुत होती है, जिसमें कर्म, ज्ञान और भक्ति का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। यहाँ संन्यास न तो केवल ज्ञानियों के लिए आरक्षित है और न ही केवल वनगमन तक सीमित है, बल्कि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपलब्ध एक आंतरिक आध्यात्मिक अवस्था है। संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा को व्यावहारिक, लोककल्याणकारी और सार्वभौमिक रूप देने में भगवद्गीता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक रही है।

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

संन्यास का सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक महत्व

संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा केवल व्यक्तिगत मोक्ष-साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन से गहरा एवं बहुआयामी संबंध है। संन्यास को यदि केवल संसार-त्याग या एकांतवास के रूप में समझा जाए, तो यह इसकी वास्तविक व्यापकता को सीमित कर देता है। वास्तव में संस्कृत साहित्य में संन्यास मानव जीवन को उच्च नैतिक मूल्यों, सामाजिक संतुलन और आध्यात्मिक उत्कर्ष की दिशा में उन्मुख करने वाली एक महत्वपूर्ण जीवन-दृष्टि है। सामाजिक दृष्टि से संन्यास भारतीय समाज-व्यवस्था का एक आवश्यक और संतुलनकारी तत्व रहा है। चतुर्वाश्रम व्यवस्था में संन्यास आश्रम को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है, किंतु इसका अर्थ समाज से पूर्ण विच्छेद नहीं है। संन्यासी प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक उत्पादन या प्रशासन में भाग न लेते हुए भी समाज के लिए मार्गदर्शक, शिक्षक और नैतिक आदर्श के रूप में कार्य करता है। उसका जीवन स्वयं एक उपदेश होता है, जो समाज को संयम, सत्य और वैराग्य का संदेश देता है। संस्कृत साहित्य में संन्यासी को समाज की भौतिक दौड़ से ऊपर उठकर मानवता के शाश्वत मूल्यों का संरक्षक माना गया है। संन्यासी की उपस्थिति समाज में यह स्मरण कराती है कि जीवन का लक्ष्य केवल उपभोग और संग्रह नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और आत्मबोध भी है। इस प्रकार संन्यास समाज में भोगवाद और अति-भौतिकता पर नियंत्रण रखने वाली शक्ति के रूप में कार्य करता है। नैतिक दृष्टि से संन्यास संस्कृत साहित्य में उच्चतम जीवन-मूल्यों का प्रतीक है। संन्यास का मूल आधार अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम है। संन्यासी को राग-द्वेष, ईर्ष्या, लोभ और मोह से मुक्त व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार संन्यास नैतिक शुद्धता और चरित्र-निर्माण की पराकाष्ठा को दर्शाता है।

संन्यास के माध्यम से मनुष्य अपने भीतर छिपी वासनाओं और प्रवृत्तियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है। यह नियंत्रण केवल व्यक्तिगत हित के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक सौहार्द और नैतिक व्यवस्था की स्थिरता के लिए भी आवश्यक है। संस्कृत साहित्य में यह स्पष्ट किया गया है कि जब व्यक्ति स्वयं को संयमित करता है, तभी समाज में शांति और सद्भाव की स्थापना संभव होती है। इस दृष्टि से संन्यास व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक नैतिकता के बीच सेतु का कार्य करता है आध्यात्मिक दृष्टि से संन्यास संस्कृत साहित्य की केन्द्रीय संकल्पना है। संन्यास का अंतिम लक्ष्य आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति है। उपनिषद, स्मृति और भगवद्गीता—सभी में यह प्रतिपादित किया गया है कि जब तक मनुष्य विषयासक्ति और अहंकार से मुक्त नहीं होता, तब तक वह ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर सकता। संन्यास इसी मुक्ति-मार्ग की आधारशिला है।

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

संन्यास साधक को अंतर्मुखी बनाकर आत्मा और परमात्मा के ऐक्य का अनुभव कराता है। यह अवस्था बाह्य साधनों पर निर्भर न होकर आंतरिक चेतना के परिष्कार से प्राप्त होती है। संस्कृत साहित्य में संन्यास को साधना की चरम अवस्था माना गया है, जहाँ साधक द्वैत से अद्वैत की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर और बंधन से मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। संस्कृत साहित्य में संन्यास का महत्व इस तथ्य में भी निहित है कि यह व्यक्तिगत कल्याण के साथ-साथ सामूहिक कल्याण का भी साधन है। संन्यासी का शांत, संयमित और विवेकपूर्ण जीवन समाज को स्थिरता और दिशा प्रदान करता है। संन्यास जीवन-मूल्यों की रक्षा करता है और समाज को यह बोध कराता है कि भौतिक प्रगति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी अनिवार्य है। यद्यपि संन्यास की अवधारणा प्राचीन काल में विकसित हुई, तथापि इसकी प्रासंगिकता आधुनिक युग में भी कम नहीं हुई है। आज का समाज भौतिकता, उपभोग और मानसिक अशांति से ग्रस्त है। ऐसे में संन्यास का मूल संदेश—आसक्ति-त्याग, संतुलन और आत्मसंयम—आधुनिक मानव के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। संस्कृत साहित्य का संन्यास जीवन से पलायन नहीं सिखाता, बल्कि जीवन को सही दिशा में जीने की कला प्रदान करता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र में संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा का ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से समग्र अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संन्यास भारतीय चिंतन की कोई एकांगी या आकस्मिक संकल्पना नहीं है, बल्कि यह एक सुव्यवस्थित, क्रमिक और गहन दार्शनिक प्रक्रिया है, जिसका विकास वैदिक काल से लेकर उपनिषद, स्मृति साहित्य एवं भगवद्गीता तक निरंतर होता रहा है। वैदिक साहित्य में संन्यास की अवधारणा अपने बीजात्मक रूप में विद्यमान है, जहाँ जीवन को कर्मप्रधान दृष्टि से देखा गया है, किंतु साथ ही वैराग्य, तप और आत्मसंयम के संकेत भी प्राप्त होते हैं। यह अवस्था कर्म से ज्ञान की ओर संक्रमण की भूमिका तैयार करती है। उपनिषदों में संन्यास आत्मज्ञान और ब्रह्मसाक्षात्कार की चरम साधना के रूप में प्रतिष्ठित होता है, जहाँ बाह्य कर्मकांड की अपेक्षा आंतरिक चेतना और वैराग्य को प्रधानता दी गई है। यहाँ संन्यास जीवन-विरोधी न होकर जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत होता है।

स्मृति साहित्य ने संन्यास को सामाजिक व्यवस्था से जोड़ते हुए उसे आश्रम-प्रणाली के अंतर्गत सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। संन्यास आश्रम को जीवन की परिपक्व अवस्था मानकर उसमें कठोर नैतिक अनुशासन, आत्मसंयम और ब्रह्मज्ञान की साधना को अनिवार्य बताया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि संन्यास न तो अनुशासनहीन स्वतंत्रता है और न ही समाज से

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

पलायन, बल्कि यह सामाजिक संतुलन बनाए रखने वाला एक आवश्यक तत्त्व है। भगवद्गीता में संन्यास की अवधारणा को सर्वाधिक संतुलित और व्यावहारिक रूप प्राप्त होता है। यहाँ संन्यास को कर्मत्याग के स्थान पर कर्मफल-त्याग और आसक्ति-त्याग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। गीता का संन्यास जीवन से विमुखता नहीं, बल्कि जीवन के भीतर रहकर आध्यात्मिक उत्कर्ष की साधना है। कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय गीता को संन्यास-दर्शन का उत्कृष्ट ग्रंथ सिद्ध करता है। इस शोध के माध्यम से यह भी स्पष्ट हुआ है कि संन्यास का महत्व केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक स्तर पर भी अत्यंत व्यापक है। संन्यास मानव को संयम, विवेक और संतुलन का संदेश देता है तथा समाज को भोगवाद और अति-भौतिकता से बचाने का कार्य करता है। संन्यासी का जीवन समाज के लिए एक नैतिक आदर्श बनकर कार्य करता है, जो मानवता को उच्च मूल्यों की ओर प्रेरित करता है।

समकालीन संदर्भ में भी संन्यास की अवधारणा की प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के भौतिकतावादी, तनावग्रस्त और असंतुलित जीवन में संन्यास का मूल संदेश—आसक्ति-त्याग, मानसिक शांति और आत्मसंयम—मानव जीवन को संतुलित और अर्थपूर्ण बना सकता है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित संन्यास की अवधारणा कालातीत, सार्वभौमिक और शाश्वत सिद्ध होती है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में संन्यास की अवधारणा मानव जीवन को परम लक्ष्य—मोक्ष—की ओर उन्मुख करने वाली एक समग्र जीवन-दृष्टि है। यह अवधारणा न केवल भारतीय दर्शन की आत्मा है, बल्कि मानवता के लिए एक स्थायी मार्गदर्शक सिद्धांत भी है, जो आज के युग में भी अपनी प्रासंगिकता और उपयोगिता बनाए हुए है।

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. यजुर्वेद — माध्यन्दिन शाखा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
2. अथर्ववेद — सायणभाष्य सहित, चौखम्बा प्रकाशन।
3. ईशोपनिषद — शांकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. कठोपनिषद — शांकरभाष्य सहित, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
5. मुण्डकोपनिषद — शांकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. बृहदारण्यक उपनिषद — शांकरभाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन।
7. छान्दोग्य उपनिषद — शांकरभाष्य सहित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
8. भगवद्गीता — शांकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. मनुस्मृति — मेधातिथि भाष्य सहित, चौखम्बा प्रकाशन।
10. याज्ञवल्क्य स्मृति — टीकासहित, चौखम्बा विद्याभवन।
11. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली — *भारतीय दर्शन*, खंड 1–2, राजपाल एंड संस, दिल्ली।
12. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ — *ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. शर्मा, चन्द्रधर — *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*, मोतीलाल बनारसीदास।
14. हिरियन्ना, एम. — *आउटलाइन ऑफ इंडियन फिलॉसफी*, जॉर्ज एलेन एंड अनविन।
15. शुक्ल, रामकुमार — *संन्यास और भारतीय संस्कृति*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
16. मिश्र, विद्याभूषण — *भारतीय आश्रम व्यवस्था*, चौखम्बा प्रकाशन।
17. चटर्जी, सतीशचन्द्र एवं दत्त, धीरेन्द्रमोहन — *एन इंट्रोडक्शन टू इंडियन फिलॉसफी*।

Airo International Journal
Peer-Reviewed
Multidisciplinary

ISSN: 2320-3714
Volume: 4 Issue: 3
December 2025
Impact Factor: 11.9
Subject: Hindi

Author's Declaration

As an author of the above research paper/article, here by, declare that the content of this paper is prepared by me and if any person having copyright issue or patent or anything otherwise related to the content, I shall always be legally responsible for any issue. For the reason of invisibility of my research paper on the website /amendments /updates, I have resubmitted my paper for publication on the same date. If any data or information given by me is not correct, I shall always be legally responsible. With my whole responsibility legally and formally have intimated the publisher (Publisher) that my paper has been checked by my guide (if any) or expert to make it sure that paper is technically right and there is no unaccepted plagiarism and hentriacontane is genuinely mine. If any issue arises related to Plagiarism/ Guide Name/ Educational Qualification /Designation /Address of my university/ college/institution/ Structure orFormatting/ Resubmission /Submission /Copyright /Patent /Submission for any higher degree or Job/Primary Data/Secondary Data Issues. I will be solely/entirely responsible for any legal issues. I have been informed that the most of the data from the website is invisible or shuffled or vanished from the database due to some technical fault or hacking and therefore the process of resubmission is there for the scholars/students who finds trouble in getting their paper on the website. At the time of resubmission of my paper I take all the legal and formal responsibilities, If I hide or do not submit the copy of my original documents (Andhra/Driving License/Any Identity Proof and Photo) in spite of demand from the publisher then my paper maybe rejected or removedfrom the website anytime and may not be consider for verification. I accept the fact that as the content of this paper and the resubmission legal responsibilities and reasons are only mine then the Publisher (Airo International Journal/Airo National Research Journal) is never responsible. I also declare that if publisher finds Any complication or error or anything hidden or implemented otherwise, my paper maybe removed from the website or the watermark of remark/actuality maybe mentioned on my paper. Even if anything is found illegal publisher may also take legal action against me.

डा. राज पाल

*****